INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS

Volume 4, Issue 7, July 2016 ISSN: 2320-2882 (Online)

ORIGINAL ARTICLE

Impact Factor: 0.345(GIF)

www.ijcrt.net

रंगमंच का चित्रकला, संगीत व अन्य कलात्मक विधाओं के साथ अंतर्संबंध

अभिषेक त्रिपाठी

पीएच॰डी॰ शोधार्थी,

(जूनियर रिसर्च फेलो), महाराष्ट्र-442005

email id- pingaakshaa@gmail.com

नाटक रंगमंच पर पूर्णता प्राप्त करता है और रंगमंच नाटक के द्वारा पूर्णता प्राप्त करता है। एक वाक्य में कहें तो नाटक और रंगमंच दोनों एक दूजे के पूरक हैं।

नाटक एक दृश्य काव्य है। नाटक को सिर्फ उसके पाठ के रूप में पूर्ण नहीं कहा जा सकता। एक नाटक तभी पूर्णता प्राप्त करता है जब वह रंगमंच पर मंचित हो जाए। यह दृश्य काव्य अनेक कलाओं का सम्मिश्रण है। इस बात के समर्थन में नाट्य विषय पर लिखी गयी अब तक की सबसे महान कृति **नाट्य शास्त्र** के प्रणेता भरतमुनि द्वारा नाट्यविधा के संबंध में कही गयी अग्रलिखित पंक्तियॉ पर्याप्त होगी–

न तत्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।
न सौ योगो न तत्कर्मं नाट्येऽस्मिन् यन्न दृश्यते।।

रंगमंचीय कला की वास्तविक सृष्टि के लिए यह आवश्यक है कि उसके प्रत्येक आधार कला से सूक्ष्मता से जुड़ा जाए, उन्हें जाना, समझा तथा आत्मसात किया जाए। इसका कारण बिल्कुल स्पष्ट और सीधा है; रंगमंचीय कला इन कलाओं के आधार स्तंभ पर ही अवलंबित है। इन कलाओं के प्रति अज्ञानता सीधे–सीधे उन आधार स्तंभों को कमज़ोर करने का कार्य करती है; फलतः रंगमंचीय कला अर्थात् नाट्यकला अपने महत्व, प्रासंगिकता और प्रभाव से दूर हटी हुई जान पड़ती है।

कुछ कला रूपों और नाट्यकला के अंतर्संबंध को स्पष्ट करने के उद्देश्य से एक संक्षिप्त विवरण यहॉ प्रस्तुत ह ै–

चित्रकला एवं नाट्यकला–

चित्रकला, चित्रकार के बौद्धिक एवं भावनात्मक अभिव्यक्ति का मूर्त रूप होता है। चित्रकला में चित्रकार कैनवास पर एक फ्रेम के भीतर बिंदू, रेखा तथा रंगों के माध्यम से सृजन करता है। वैसे देखा जाए तो पेंटिंग स्थिर होती है, मूक होती है तथापि उसमें बिंदू, रेखा और रंगों के सम्मिलन से सृजित कृति नाना प्रकार के इतने भावों, विचारों को संप्रेषित करने का माद्दा रखती है कि बस उसे देखते ही उस प्रतिभा की दाद देने और उस हस्त का दीदार करने के लिए जी मचल उठता है जिसने उस कलाकृति को साकार किया। अक्सर पेंटिंग के संबंध में लोगों को यह कहते हुए सुना जाता है–''ऐसा लग रहा है कि बस अभी बोल उठेगा।'' इस प्रकार की प्रतिक्रिया उस पेंटिंग की जीवंतता, सार्थकता को ही स्थापित करती है।

पेंटिंग का फ्रेम, उसमें बिंदू, रेखाओं का प्रयोग, उसके रंग, उसके कंपोजिशन, ये सभी पेंटिंग में अपने प्रयोग के आदर्शतम रूप में विद्यमान होते हैं। इन सभी तत्वों के अर्थपूर्ण, प्रासंगिक तथा संप्रेषणीय प्रयोग की समझ रंगमंचीय कला को साकार करने के लिए अपरिहार्य है। नाट्यकला बहुत हद तक चित्रकला से जुड़ी हुई है। नाटक में भी फ्रेम होता है, उसमें भी बिंदू, रेखा उपस्थित रहती है, उसमें भी रंगों का प्रयोग होता है, उसमें भी कंपोजिशन होता है; और अन्ततोगत्वा यह कि इन सब का उद्देश्य एक सार्थक अर्थ को दर्शकों तक संप्रेषित करना होता है।

चित्रकला के अध्ययन से अध्येता में सौंदर्यात्मक समझ, रचनात्मकता, कल्पनाशीलता, कहानी कहने की अद्भुत क्षमता पैदा होती है। चित्रकला का अध्ययन अध्येता में जगह को कैसे भरा जाए, उसका कैसे सार्थक उपयोग किया जाए, इसकी समझ पैदा करता है। चित्रकला यह सीखाती है कि स्पेस कैसे भरा जाए, फोकल पॉइण्ट कैसे उभारा जाए, फ्रेम कैसे बैलेन्स किया जाए आदि आदि। इन समस्त विधाओं का ज्ञान रंगमंचीय कला के लिए बेहद अनिवार्य है। इस समझ के बलबूते अध्येता रंगमंचीय स्पेस को भी संतुलित रूप से भरने की काबिलियत विकसित कर सकता है।

नाट्यकला को गुणशाली बनाने के लिए यह आवश्यक है कि उसे स्थिर फ्रेमों के गुच्छ के रूप में देखते हुए उसके प्रत्येक फ्रेम पर सूक्ष्मता से कार्य किया जाए ताकि वह कलात्मकता की नई ऊँचाई को छूते हुए मंचित हो।

उक्त किसी भी क्रिया–प्रक्रिया से परिचय या उसमें दक्षता चित्रकला के अध्ययन या उसे जानने–समझने के दौर से गुजरे वगैर नहीं हासिल की जा सकती।

मूर्तिकला एवं नाट्यकला–

एक मूर्ति बिना हिले–डुले, बिना बोले, बिना ईशारा किये बहुत कुछ कहने का माद्दा रखती है। प्रत्येक मूर्ति की अपनी अलग बनावट, भाव–भंगी होती है जिसके आधार

पर वह अभिव्यक्ति की एक विशेष प्रक्रिया में रत रहती है। यह आवश्यक नहीं है कि एक मूर्तिकार जिन भावों के साथ अपनी कलाकृति को जीवंत करे, उसे दर्शक हूबहू उसी रूप में ग्रहण करे; परंतु इतना तो कहा ही जा सकता है कि यदि उस कलाकृति को दर्शक मनोयोग से देखे तो उसके भावों से बहुत हद तक साक्षात्कार स्थापित करने में सफल अवश्य ही होते हैं। मूर्तिकला भी अभिव्यक्ति के एक सूक्ष्म कला से अवगत कराती है। मूर्तिकला यह स्थापित करती है कि कोई भी भाव–भंगी निरर्थक नहीं होती, अपितु एक निश्चित उद्देश्य के फलतः बनायी जाती है। भाव–भंगी की इस सूक्ष्मता को समझना रंगमंच के लिए अत्यंत आवश्यक है।

स्थापत्य कला–

रंगमंच में स्थापत्य कला का खूब इस्तेमाल होता है। रंगभवन स्थापत्य कला का एक उत्कृष्टतम नमूना है। स्थापत्य कला के सूक्ष्म तत्वों की तमाम बानगी रंगभवन में बैठकर महसूस की जा सकती है। रंगभवन का इकोस्टिक होना, रंगभवन के किसी भी हिस्से में बैठे दर्शक को पूर्ण रूप से रंगमंच पर चल रहा समस्त कार्य व्यापार दृष्टिगत होना, यह समस्त बातें स्थापत्य कला की ही विषयवस्तु हैं। यह बात तो रंगभवन की है, जिसकी संरचना कार्य में आवश्यक नहीं है कि रंगकर्मी की भागीदारी हो ही; परंतु स्थापत्य कला की उपयोगिता बस भवन तक ही सीमित नहीं रहती अपितु वह रंगमंच पर भी खूब विस्तार पाती है। रंगमंच पर सेट लगाने से लेकर प्रापर्टी के प्रयोग तक सबमें स्थापत्य कला की छटा परिलक्षित होती है। स्थापत्य कला के गुण– एकता, पूर्णता, संतुलन, अनुपात आदि रंगमंच में अत्यंत ही प्रासंगिक हैं। स्थापत्य कला एवं रंगमंच, दोनों का प्रभाव रूप–संघटन पर निर्भर करता है, सुडौलता सवं सामंजस्य दोनों के लिए महत्वपूर्ण है। त्रासदी के संबंध में अरस्तू का विचार है कि उसका कार्य निश्चित आयाम वाला और पूर्ण हो, उसमें प्रारंभ, मध्य और अंत की स्थिति स्पष्ट हो तथा उसका कथानक विस्तार ऐसा हो जिसे दृष्टि एक साथ समग्र रूप में ग्रहण कर सके। एक तरह से देखें तो यह सब बहुत हद तक स्थापत्य कला के नियमों जैसा ही है। स्थापत्य कला का अध्ययन अवश्य ही रंगमंचीय क्रियाओं के संपादन में एक अलग किस्म की गुणवत्ता , प्रभावशीलता सृजित कर सकता है।

संगीत–

प्लेटों ने संगीत के प्रभाव को स्वीकार करते हुए उसे हृदय की शिक्षा के लिए आवश्यक बताया था–

Music for the mind and gymnastics for the body.

Plato

कहा जा सकता है कि रंगमंचीय कार्य व्यापार की गुणवत्ता और संप्रेषणीयता में श्रीवृद्धि हेतु संगीत एक अहम तत्व के रूप में इस्तेमाल होता है।

संगीत वस्तुतः एक सरस प्रवाह है, जो मनुष्यों के साथ एक खास संबंध स्थापित कर उन्हें किसी खास दिशा में बहा ले जाने का माद्दा रखती है। संगीत के फलतः हमारे मन में एक विशेष प्रकार का स्पंदन, आवेग पैदा होता है, जिसमें हमारे भाव, बुद्धि और मनोविज्ञान को प्रभावित करने की ग़हरी क्षमता होती है। मनुष्य संगीत का आनंद अकेला रहकर घोर एकांत की अवस्था में उठाये या, समारोहों में लोगों के भीड़–भाड़ के बीच; उसका असर उस पर पड़ता ही है।

संगीत की महत्ता चिकित्सा विज्ञान में प्रचलित म्यूजिक थेरैपी जैसे टर्म से भी स्थापित होती है। आज चिकित्सा विज्ञान तमाम रोगों के ईलाज में संगीत को एक टूल के रूप में इस्तेमाल कर रहा है।

संगीत का अस्तित्व मानव जाति के लिए कोई नया नहीं है; और न ही संगीत पर उसी का कॉपी राईट है। संगीत तो सर्वव्यापी है। हवा चलने से लेकर, नदियों की कलकल तक, झरनों की ध्वनि से लेकर पशु–पक्षियों की आवाज़ों तक, कोयल की कूक से लेकर चिड़ियों की चहचहाहट तक.... हर जगह संगीत है।

संगीत के नाम पर मानव जाति के पास कॉपी राईट का सर्टिफिकेट भले हो, परंतु उसका संगीत प्रकृति के संगीत का अनुकरण है, इसका सबूत प्रकृति से तादात्म्य रखने वाले मनुष्य बखूबी पा सकते हैं।

भारतीय संगीत के मुख्य तत्व स्वर, ताल व लय हैं। इन्हीं तत्वों के समन्वय से ही संगीत में रस निष्पत्ति संभव है। संगीत के किसी स्वरूप का निर्माण इन तत्वों पर ही निर्भर है। उदाहरणतः यदि हम भारतीय शास्त्रीय–गायन में ख्याल, ध्रुपद, धमार आदि गायन शैलियों पर दृष्टिपात करें तो हमें यह देखने को मिलता है कि ये सभी विधाएँ अलग–अलग हैं। इन सभी विधाओं का कलेवर अलग–अलग है किन्तु ये सभी स्वर, लय व ताल से समन्वित होकर ही अपनी विधाओं की पहचान बनाती हैं।

लय का अर्थ है समान अथवा अवयवों की पुनरावृत्ति से उत्पन्न नाद। लय का अर्थ है घुलमिल जाना। बाह्य रूप से यह क्रिया और आंतरिक रूप से भावों के साथ तारतम्य कर लेना ही लय है। जैसा भाव होता है, उसी के अनुरूप चेष्टाएँ होती हैं। यह चेष्टाएँ गति तथा वाणी में अपना स्वरूप प्रकट करती हैं। इसी से कलाओं में लय की सृष्टि संभव होती है और इसी को सुनकर श्रोतागण भी लय का अनुभव करते हैं। मनुष्य के जीवन में

लय का बड़ा प्रभाव है। जीवन के सभी उतार–चढ़ाव, इच्छाओं और भावनाओं की प्रतिध्वनि में लय व्याप्त है। लय के अभाव में संगीत का कोई महत्व नहीं रह जाता।

संगीत कला सूक्ष्म अथवा कोमल है अतः अपनी गति के साथ मस्तिष्क को कोमल व सूक्ष्म बना देती है। प्रत्येक गति व पद की विशिष्ट चाल होती है। कोई अपरिचित व्यक्ति भी गीत की गति के साथ ताल देने लगता है। बिना ताल के अगर लय चलती रहे तो मुमकिन है कि उसके लगातार चलने से श्रोता ऊब जाएँ अतः लय को संगीतोपयोगी बनाने के लिए एक निश्चित चक्र में बॉध देते हैं। उस मापक चक्र या तंत्र का नाम संगीतज्ञों ने ताल दिया है। जिस प्रकार बिना अस्थि मंजर के शरीर का स्थिर रहना मुश्किल है, उसी तरह ताल के बिना राग उन्माद प्रतीत होते हैं।

भिन्न प्रकार की लयों का प्रयोग विभिन्न भावनाओं को व्यक्त करने के लिए किया जाता है। विभिन्न रसों का संबंध भी लयों से जोड़ा गया है। करुण रस के परिपाक के लिए अनुकूल लय विलम्बित है। हास और रति में मंदता और उद्वेग का भाव होता है फलतः हास और श्रृंगार के लिए मध्य लय उपयुक्त है। उत्साह, क्रोध तथा विस्मय के अवसरों पर मनुष्य के कार्यों की गति तीव्र हो जाती है। इसलिए वीर, रौद्र, अद्भुत और बीभत्स रसों को उत्पन्न करने के लिए द्रुत लय उपयुक्त होती है। इन सभी लय की क्रियाओं का उपयोग नाट्य एवं फ़िल्म संगीत में कथानुसार भावों को प्रकट करने के लिए किया जाता है। भरतमुनि ने अपने ग्रंथ नाट्यशास्त्र में काकु का प्रयोग किया है। संगीत में काकु का प्रयोग भावनाओं को व्यक्त करने में बड़ा सहायक होता है। भावों को व्यक्त करने के लिए ध्वनि में जो भिन्नता आती है उसे काकु कहते हैं। ध्वनि में भावों को व्यक्त करने की अद्भुत शक्ति होती है। हृदयगत भावों को व्यक्त करने के लिए संगीत में काकु का प्रयोग किया जाता है।

यदि नाट्य संगीत में ऑधी का दृश्य दिखाया जा रहा है, तो इस भाव को अधिक प्रभावोत्पादक बनाने के लिए द्रुत लय में हवा के बहने की ध्वनि को उसी वाद्य पर बजाना होगा, साथ ही जो स्वर प्रयुक्त किये जाएँगे वे भी द्रुत लय में ही बजेंगे। इसी प्रकार यदि कहीं दो व्यक्तियों में युद्ध हो रहा हो, उसी समय किसी गंभीर ध्वनि के अवनद्ध वाद्य पर द्रुतलय में कुछ वादन किया जाय, बीच बीच में ध्वनि की तीव्रता घटती–बढ़ती रहे तो वह दृश्य अधिक सजीव प्रतीत होगा।

संगीत में स्वर और लय, जो कि ताल का ही अंग है, दोनों का ही महत्व है। लय के चमत्कार से हास्य रस की उत्पत्ति भी की जा सकती है। यदि कुछ स्वरों को किसी ऐसे वाद्य पर बजाएँ जिसकी ध्वनि का साम्य मनुष्य कंठ जैसा हो और इन स्वरों को झटके से समाप्त करते हुए बजाएँ अर्थात पहली आधी मात्रा में स्वर बजाएँ व दूसरी आधी मात्रा में शांत हो जाए तो आप अनुभव करेंगें कि वाद्य की ध्वनि से हास्य रस की निष्पत्ति हो

रही है। यही नहीं यदि स्वरों का विभिन्न लयों में प्रयोग किया जाए तो रौद्र रस की निष्पत्ति भी संभव है।

नाट्य संगीत में करूण, श्रृंगार, शांत, वात्सल्य, वीर, रौद्र, अद्भुत, हास्य आदि विभिन्न रसों की निष्पत्ति के लिए उपयुक्त तालों तथा उनके विविध–स्वरूपों का प्रयोग विभिन्न दृश्यों के लिए आवश्यकतानुसार किया जाता है। जिससे वातावरण में सजीवता आ जाती है।

वाद्यकला :–

वाद्य शब्द वद् धातु से बना है और उसका अर्थ है जिससे बुलवाया जा सके, अर्थात् जो यंत्र नाद उत्पन्न कर सकता है वह वाद्य है।

नाट्यकला के लिए वाद्य संगीत का होना बहुत आवश्यक है। यदि वाद्य संगीत का सहारा नाटक को न मिले तो वह निर्जीव सा प्रतीत होगा, नाटक को सजीव तथा शुभफलदायक बनाने के लिए ही महर्षि भरत ने नाटक में वाद्यों को आवश्यक माना है।

जिस प्रकार भिन्न भिन्न मनुष्यों की वाणी से भिन्न–भिन्न प्रभाव पैदा होता है, उसी प्रकार भिन्न–भिन्न वाद्यों की ध्वनियों से अलग–अलग प्रभाव पैंदा होते हैं। इसलिए नाटक में जब कोई दृश्य प्रस्तुत की जाती है तो आवश्यकतानुसार वाद्यों की अलग अलग ध्वनियों से उसे जीवंत करने का प्रयास किया जाता है।

नाट्य की सरसता बनाए रखने के लिए संगीत कितना जरूरी है, यह भरत के इस कथन से पता चलता है–

यथावर्णादृते चित्रं शोभते न निवेशनम्।

एवमेय बिना गानं नाट्यं रागं न गच्छति।।

अर्थात् जिस प्रकार बिना रंग प्रयोग के चित्र शोभित नहीं दिखाई देता, वैसे ही बिना संगीत के नाट्य रागात्मक नहीं बन पाता।

रंगमंच पर अभिनेता की उच्चरित पंक्ति, उसके मौंन या क्रियाकलाप को नाट्यप्रसंग से बेहद सघनता से जोड़ते हुए अभिव्यक्त करने के लिए संगीत तथा ध्वनि प्रभाव का उपयोग किया जाता है। अंधेरी रात के लिए ध्वनि प्रभाव का संयोजन कई प्रकार से हो सकता है। यदि हत्या और षड्यंत्र का दृश्य सामने है तो उल्लू की चीख–पुकार, कुत्ते की रोने की आवाज़ आदि उस अभिव्यक्ति को परिपुष्ट करेंगे। स्थान और समय निर्देष का काम ध्वनि प्रभाव द्वारा बहुत अच्छी तरह होता है। यदि रेलवे प्लेटफॉर्म का दृश्य है तो नेपथ्य में आती जाती रेलगाड़ियों का ध्वनि प्रभाव स्थान निर्देश का काम पूरा कर देगा।

संगीत नाट्य विधा का एक महत्वपूर्ण अंग है। संगीत का इस्तेमाल मूड बनाने में, दृश्य व परिस्थिति को सजीव बनाने में, ध्वनि प्रभाव उत्पन्न करने में, दृश्य बदलाव के दौरान उत्पन्न डेड गैप भरने में किया जाता है। संगीत बहुत बार नाटक को व्याख्यायित करने का भी कार्य करता है। स्थान, समय, और परिस्थिति के हिसाब से संगीत का नाट्य विधा के साथ संतुलित संयोजन दृश्य को नाटकीयता के उच्चतम शिखर तक पहुँचा सकता है।

संगीत एवं ध्वनि प्रभाव आकर्षक तो होने ही चाहिए, साथ ही वे नाटक की स्थिति विशेष से इस तरह घुल–मिल जाने चाहिए कि उनकी एक संपूर्ण इकाई बन जाये और दोनों उस प्रदर्शन के लिए दूध–पानी जैसे हो जाएं। अच्छे संगीत तथा ध्वनि प्रभाव के लिए यह आवश्यक है कि वह अपनी ओर सामाजिकों का ध्यान कम से कम आकर्षित करे और अपनी हस्ती खोकर नाटक की इकाई में विलीन हो, उसके व्यक्तित्व को उजागर करे।

रंगमंच के संबंध में एक चीज़ बिल्कुल स्पष्ट है कि विविध कलाएं इसमें समाहित हैं; और रंगमंचीय कार्यों की सफलता के लिए यह बिल्कुल आवश्यक है कि सभी कलाओं से इसके अंतर्संबंधों को भली भॉति समझा जाए। रंगमंचीय कार्य–व्यापार अतिशय व्यापक है और व्यापक रूप से ही अन्य कला विधाओं से अंतर्संबंधित है। रंगमंचीय कार्य–व्यापार के कदम–कदम पर इस अंतर्मिलन को बखूबी देखा और समझा जा सकता है।

संदर्भ –

- रंगकर्म – वीरेन्द्र नारायण।
- ध्वनि और संगीत – प्रो0 ललितकिशोर सिंह।
- संगीत एवं चिंतन – मुकुन्द लाठ।
- भारतीय फ़िल्म संगीत में ताल–समन्वय – डॉ0 इन्दु शर्मा 'सौरभ'।
- रंग प्रसंग, अंक 40, 2012